



ISSN: 3049-2017

IJMH 2026; 3(2): 262-265

© 2026 IJMH

www.themultijournal.com

Received: 28-03-2026

Accepted: 13-04-2026

Publish : 14-04-2026

आदेश नौडियाल

शोध-छात्र संस्कृत संस्थान,  
JNU

## भिक्षु-गीता का दार्शनिक महत्त्व व जीवन में प्रासंगिकता।

आदेश नौडियाल

शोधसार (Abstract)

प्रस्तुत शोध-पत्र में भिक्षु गीता के दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। यह गीता काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छह वर्गों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश देती है। यह मन ही संसार रूपी चक्र को निर्देशित करता है, अतः मन की प्रधानता इस गीता का केन्द्र है, जब साधक मन को समझने में अक्षम होते हैं, तो वह दुःख का कारण देव, आत्मा, ग्रह, कर्म तथा कालादि को समझने लगते हैं। ये सभी कारण मन द्वारा आरोपित हैं, वस्तुतः मन ही जीव मात्र के सुख-दुःख का कारण है। मनोजय के उपायों में तितिक्षा, भोग रहित उपभोग, योग के अष्टाङ्ग मार्ग तथा क्षमा के मार्ग को सम्मिलित किया गया है। आधुनिक जीवन शैली में मानसिक स्वास्थ्य तथा कर्म-बन्धनों से छुटने पर ही मनुष्य अपने जीवन को प्रासङ्गिक बनाने में सक्षम हो सकता है, इन विषयों को इस शोध-पत्र में समायोजित किया गया है।

प्रस्तावना

आत्म विद्या का उपदेश तथा आत्म-तत्त्वोपदेश को जिस कथा में गाया जाता है, वह ज्ञान-निधि गीता कहलाती है।<sup>1</sup> गीता से अभिप्राय पाठक प्रायः भगवद्गीता से ही मानते हैं, किन्तु गीता का अर्थ केवल भगवद्गीता न होकर के वह गायन है, जो तपस्वी साधक को आध्यात्मिक सत्य से परिचित कराने का कार्य करता है। संस्कृत वाङ्मय में अनेकों गीताओं के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जिनमें भागवत महापुराण भी एक है, श्रीमद्भागवत महापुराण अष्टादश महापुराणों में लोकप्रिय तथा सर्वोच्च महापुराण है, प्राचीन काल में विद्वत्ता की परीक्षा के लिए भागवत महापुराण को मुख्य माना जाता था।<sup>2</sup> वेदव्यास द्वारा रचित यह पुराण १२ स्कन्ध तथा १८००० श्लोकों से समन्वित महापुराण है। भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति तथा लीलाओं के साथ-साथ अवतार तथा ज्ञान आदि मुख्य विषयों को इस पुराण में दर्शाया गया है। इस ग्रन्थ को शुकदेव मुनि ने द्वारा राजा परिक्षित को आत्मज्ञान व मोक्ष को प्राप्त कराने के लिए सुनाया था। भगवान की दिव्य लीलाओं के माध्यम से यह ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा देने का कार्य करता है। एतदर्थ यह ग्रन्थ भारतीय धर्म का मूलाधार के रूप में ख्याति लब्ध है।

यद्यपि सम्पूर्ण भागवत महापुराण महत्त्व की दृष्टि से पाठकों तथा जिज्ञासुओं के मध्य अत्यन्त प्रसिद्ध है, तथापि उद्धव व श्रीकृष्ण सम्वाद के उच्च दर्शन को भिक्षुगीता एकादश स्कन्ध के २३वें अध्याय के रूप में इस ग्रन्थ को और भी अधिक महत्वपूर्ण बना देता है।

**भिक्षु गीता** = कलेवर की दृष्टि से यद्यपि यह गीता लघु प्रतीत होती है, किन्तु विषय की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्व की है। यह गीता एक अत्यन्त धनी व लोभी ब्राह्मण के सन्यासी (भिक्षु) हो जाने की कथा है, जिसमें वह भिक्षु आत्म ज्ञान को प्राप्त करता है। मन पर विजय कैसे प्राप्त करें? जीव के सुख-दुःख का कारण क्या है? मन को कैसे संयमित करें? मन क्यों जीव को कर्म बन्धनों में धकेलता है? इत्यादि उद्धव

Correspondence:

आदेश नौडियाल

शोध-छात्र संस्कृत संस्थान,  
JNU

के प्रश्नों का भगवान समाधान करते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट करते हैं कि जीवन में होने वाले तनाव से कैसे बचना संभव है? मानसिक स्वास्थ्य को कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है? दुष्टों के द्वारा सताये जाने पर भी जिसने अपना धैर्य न छोड़कर भिक्षु भाव में यह गीत गाया है वह इतिहास इस गीता में वर्णित है। उद्धव के आग्रह पर भगवान् यह गीता ज्ञान सुनाते हैं।<sup>3</sup>

**उद्देश्य** = प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भिक्षु-गीता के सिद्धान्तों को विश्लेषण करना व मन को संयम करने में यह गीता किस प्रकार से उपयोगी है यह समझना मुख्य उद्देश्य है। जिससे यह जनमानस के मानसिक शान्ति में सहायक सिद्ध हो सके।

### दार्शनिक महत्व

**मनोजय के मार्ग** = नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, उपासनादि कर्मों का अनुष्ठान। अभ्यास तथा वैराग्य का मार्ग अपनाकर। स्वाध्याय, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि मार्गों का अनुशरण करना।

**तितिक्षा**= भिक्षु जब भी प्रताडित व अपमानित हुआ है, वह प्रतिक्रिया न देकर, इसे अपने जन्मान्तरों का फल समझकर उन्हें क्षमा कर देता है। इस प्रकार की सहनशीलता "तितिक्षा" के सम्प्रत्यय को परिभाषित करती है।

**तप** = द्वन्द्वों को सहन करना तप कहलाता है।<sup>4</sup> भिक्षु-गीता का सन्देश है कि मनुष्य को सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान इन सभी द्वन्द्वों से ऊपर होकर के स्वयं में अवस्थित होना चाहिए।

**भोग रहित उपभोग**= जब मानव भोग को अपना मुख्य आधार बनाकर कार्य करता है, तब वह भिक्षु की तरह अधार्मिक कर्मों में संलग्न, होकर अपने पुत्र तथा पत्नी को दुखी करना, देवता, अतिथि तथा सेवकों का अपमान करना प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार के चरित्र को स्मृति ग्रन्थों में "कदर्य" कहा गया है।<sup>5</sup> यक्षों के समान वह मात्र धन की रक्षा करता था जिस कारण वह न उस धन का दान करता था और न ही भोग। कुछ ही समय पश्चात् पञ्चमहायज्ञों के देवता उस पर कुपित हो गये।<sup>6</sup> जिसके परिणाम स्वरूप उस ब्राह्मण का धन उसके वान्धवों ने ले लिया, कुछ चोरों के द्वारा चुराया गया, कुछ आग में जलकर नष्ट हो गया।<sup>7</sup> इस प्रकार जब वह न धन ही बचा सका, न उसका भोग ही कर सका तो चिन्ता में संतप्त होकर उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया।<sup>8</sup> शास्त्र धन की तीन प्रकार की गति बताता है, दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति दान व भोग नहीं करता है उसका धन नष्ट हो जाता है।<sup>9</sup> नीतिशास्त्र के आचार्य विष्णुशर्मा धन के विषय में कहते हैं कि या तो धन को दान दे देना चाहिये या फिर उपभोग ही किया जाना चाहिए, इसका संचय मात्र नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि संचित किये गये धन की स्थिति उन मधुमक्खियों की तरह है जो सदैव धन संचय करते रह जाते हैं और अन्त में मधु अन्य लोग ही लेकर चले जाते हैं।<sup>10</sup> इस समस्या से बचने के लिये मानव को भोग रहित उपभोग करना चाहिए, तात्पर्य

यह है कि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग आवश्यकता अनुसार ही करना चाहिए। लोभ व आसक्ति के बिना, त्याग के साथ जीवन यापन करने का ज्ञान हमें उपनिषद् देता है।<sup>11</sup>

**जीव के सुख तथा दुख के कारण** - भिक्षु आत्म चिन्तन करते हुये, स्वयं से प्रश्न करता है कि सुख-दुःख का कारण क्या है? मेरे सुख-दुःख से आत्मा का क्या संबंध है? क्या मनुष्य ही सुख-दुःख का कारण है?<sup>12</sup> भगवान् कहते हैं कि सुख-दुःख के कर्ता तथा कर्म दोनों ही पार्थिव हैं, अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न हैं क्योंकि देह पृथ्वी का विकार है, आत्मा का नहीं। इसलिए सुख-दुःख का कारण आत्मा कभी भी नहीं हो सकता है।

क्या दुःख का कारण देवता है? इस पक्ष में आत्मा का क्या संबंध है? यदि दुःख का कारण देवता हो जाएंगे तो विकृत तथा विकारयुक्त होने वाले दोनों ही देवता हैं, यथा यदि अपने ही हाथ से अपने किसी अंग को अर्थात् मुख को चोट लग जाए या भोजन करते समय दांत से अंगुष्ठ कट जाए तो दोनों हाथ व मुख के अभिमानी देवता तो अग्नि व इन्द्र ही हैं इनसे आत्मा का क्या ही सम्बन्ध है।<sup>13</sup> आत्मा तो विकार रहित तथा अहङ्कार शून्य है।

फिर जिज्ञासा करते हैं की आत्मा को सुख-दुःख का कारण मान लिया जाए तो आत्म तत्व से भिन्न तो कोई है ही नहीं, अर्थात् किस पर क्रोधित हो सकते हैं, क्योंकि वह क्रोध भी उसका अपना ही स्वभाव हो जाएगा, अर्थात् न सुख है ना दुःख है।<sup>14</sup>

यदि ग्रहों को सुख-दुःख आदि का कारण मान लिया जाए तो कहते हैं कि इससे भी आत्म तत्व को कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि जन्म मरण तो शरीर का है साथ ही लग्न के आठवें स्थान में स्थित ग्रह से सुख-दुःख तो शरीर का देखा जाएगा, उससे आत्मतत्व का क्या सम्बन्ध ? दैवज्ञ कहते हैं कि अन्तरिक्ष में स्थित ग्रह, अर्थ दृष्टि से पीड़ा करते हैं, ग्रहों में होने वाली समस्या, कष्ट या पीड़ा उस ग्रह के लग्न में जो जातक जन्म ले रहा है उसके देह को भी होगी, किन्तु पुरुष (आत्मा) तो उस ग्रह से भी भिन्न है अतः किस पर क्रोधित हो सकते हैं?

क्या कर्मों को दुःख का हेतु माना जा सकता है? और आत्मा के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? इस पर कहते हैं की वस्तु विकार से युक्त होने पर जड़ तथा हिताहित का ज्ञान होने पर चेतन है, जब दोनों धर्म किसी में रहेंगे तो कर्म हो सकेगा, किन्तु मनुष्य देह तो अचेतन है और उसमें निवास आत्मतत्व निर्विकार व साक्षी स्वरूप है और वह आत्म-तत्व शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, अतः सुख-दुःख का मूल कर्म नहीं है।<sup>15</sup>

यदि काल को सुख दुःख का हेतु माना जाए तो आत्म तत्व के साथ उसका क्या सम्बन्ध स्थापित होगा? उत्तर पक्ष में यह स्पष्ट होता है कि काल भी जीवात्मा ही है, क्योंकि वह ब्रह्म का अंश है अतः अपना अंश कैसे अपने को कष्ट दे सकता है, यथा अग्नि व बर्फ के उदाहरण से इस विषय को स्पष्ट किया जा सकता है कि अग्नि अपने अंश स्वरूप अग्नि को सन्तप्त नहीं कर सकती है, साथ ही बर्फ भी अपने अंश बर्फ

को नहीं गला सकती है। अग्नि के उपाधि भूत काष्ठ अंश का दाह से नष्ट होना दिखाई देता है, अतः काल ब्रह्म का अंश विशेष है तथा आत्मा सबसे परे है, आत्मा को सुख-दुःख आदि द्वन्द्व नहीं होते हैं।<sup>16</sup>

आत्म-तत्व प्रकृति के स्वरूप गन्ध आदि से सर्वदा रहित है अतः किसी से भी उस आत्म-तत्व का स्पर्श नहीं होता है, स्पर्श तो जन्म-मरण चक्र में गतिमान अहङ्कार को होता है, इस प्रकार जो समझता है वह भयमुक्त स्वभाव वाला होता है, अहङ्कार निमित्त मात्र है, वह वास्तविक नहीं है यह ज्ञान उदार व्यक्तित्व की निर्मित कराने वाला है।<sup>17</sup> पूर्व में भी ऋषि मुनि परमात्म निष्ठा का आश्रय ग्रहण करके मुक्ति को प्राप्त किए हैं। स्वयं में भी परमात्म तत्व का आश्रय अज्ञान सागर से दूर होने हेतु करूँगा व परमात्म निष्ठा परमपिता परमेश्वर श्रीकृष्ण के चरणों में उपासना के माध्यम से प्राप्त हो जाएगी, ऐसा कहता हुआ वह भिक्षु प्रसन्नचित्त होकर के यह गीत गाता है कि मनुष्य को सुख तथा दुःख देने वाला इस संसार में कोई भी नहीं है। यदि किसी व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे सुख दुःख का कारण कोई और है तो यह उसके चित्त का भ्रम है, क्योंकि सम्पूर्ण संसार में जो भी सम्बन्ध स्थापित हैं यथा- मित्र, शत्रु या उदासीन ये सारे भेद अज्ञान से उत्पन्न या कल्पित हैं भगवान् भी उद्धव जी को स्वयं में ध्यान लगाने के लिए कहते हैं साथ ही बुद्धि द्वारा मन को वश में करने पर भगवान् में नित्य मुक्त होकर स्थित हो जाना निर्देशित करते हैं, यह ही सम्पूर्ण योग का सार है।<sup>18</sup> अपने मन को निग्रह करने में असमर्थ व्यक्ति भी जब भिक्षु द्वारा गाए गए, इस वृत्तान्त को श्रवण, मनन करेगा तो मन को निग्रह करने में समर्थ हो सकेगा।<sup>19</sup> वस्तुतः भगवान् ने भिक्षु को माध्यम बनाकर इस वृत्तान्त का उद्घाटन किया है। जिससे भगवान् भक्तों के चित्त में प्रवेश करके उनका सम्पूर्ण दुःख समाप्त कर सकें।

**मन को निग्रह करने के उपाय-** स्वधर्म पालन अर्थात् नित्य, नैमित्तिक कर्मों का पालन करना, सद्व्रतों एकादशी आदि का पालन करना इन सभी कर्मों का फल मन का निग्रह करना ही है।<sup>20</sup> नित्यादि कर्मों का परम प्रयोजन बुद्धि को शुद्ध करना है, तथा उपासना आदि कर्मों का परम प्रयोजन चित्त की एकाग्रता को बनाए रखना है।<sup>21</sup> अतः मन का निग्रह हो जाना तथा परम-तत्व में लगना परम योग है।<sup>22</sup> मन का निग्रह सर्वश्रेष्ठ ज्ञान भी है।<sup>23</sup> क्योंकि जो मन को अपने वश में कर लेगा तथा प्रशान्त चित्त वाला हो जाए, उस साधक को दान आदि सत्कर्मों को करने का क्या लाभ प्राप्त होगा, क्योंकि उसे तो सभी कर्मों का फल प्राप्त ही है, साथ ही चञ्चल व आलस्य युक्त मन वाले व्यक्ति का दान आदि देने से क्या ही प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।<sup>24</sup>

वेदान्त दर्शन तो यहाँ तक कहता है कि आत्मज्ञान अर्थात् मोक्ष का अधिकारी वही व्यक्ति है जो प्रशान्त चित्त वाला हो तथा जिसका मन शान्त हो, जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, अर्थात् जिसका मन व इन्द्रियाँ संयमित हैं, जिसके सम्पूर्ण दोष भी क्षीण हो गए हैं तथा जिसने वैराग्य प्राप्त लिया हो, शास्त्र जैसा कहे

उस प्रकार का आचरण करने वाला हो, वह मोक्ष का अधिकारी है, इस प्रकार से शास्त्रों में नित्य, नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान आवश्यक बतलाया गया है, यद्यपि मन का स्वभाव चञ्चल व प्रमादि है, किन्तु हे महाबाहो निरन्तर अभ्यास व वैराग्य (अनासक्ति) से मन का निग्रह किया जा सकता है।<sup>25</sup>

**कर्मबन्धनो से छुटने के मार्ग-** साधक सारे विषय भोगों को सर्वप्रथम त्याग दे, त्यागने के पश्चात् गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दे, तब वह परिव्राजक कहलाता है।<sup>26</sup> इस प्रकार वह योगी अपना जीवन यापन करने लगा, योगी का आचरण कैसा हो? इस विषय पर एक दृष्टान्त प्राप्त होता है कि स्वर्ण हो अथवा लोष्ट हो, गृह हो या निर्जन वन विशेष हो, स्निग्ध हो अथवा चन्दनयुक्त स्थान हो सभी परिस्थितियों में समानता का भाव जिस व्यक्ति में रहे वह योगी कहलाता है।<sup>27</sup> भगवान् स्वयं इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मैं उन जीवों का सम्मान करता हूँ, जो सभी व्यक्तियों में समानता का भाव रखते हैं। तथा समानता का दर्शन करते हैं, साथ ही जिन्हें अन्यो के सुख-दुःख भी अपने ही सुख-दुःख के समान लगते हैं, ऐसे व्यक्ति सभी प्राणियों में उस ही परमेश्वर को देखते हैं तथा ऐसे प्राणी सभी प्राणियों के शुभचिन्तक होते हैं। सभी के आन्तरिक लाभ की चिन्ता करते हैं यही पूर्ण योगी का समदर्शन कहलाता है।<sup>28</sup> इस प्रकार का आचरण व्यक्ति को कर्म बन्धनों से मुक्त करने में सहायक सिद्ध है।

**जीवन में प्रासंगिकता =** वर्तमान तनावपूर्ण युग में भिक्षु-गीता की शिक्षाएँ, वैराग्य और मानसिक शान्ति को प्राप्त कराने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। जिससे मानव अपने अवसाद के मुख्य कारण को सरलता से समझ सकेंगे तथा आत्म नियन्त्रण के माध्यम से समाधान को प्राप्त कर सकेंगे।

**धैर्य का मार्ग =** प्रायः मनुष्यों में यह समानता देखी जाती है कि वे विपत्ति के समय अपना धैर्य खो बैठने से ओर अधिक समस्या में जा पहुँचते हैं। भिक्षु के आचरण से यह पाठकों के लिए अनुकरणीय रहेगा कि विपत्ति में धैर्य को बनाये रखना ही समस्या के समाधान हेतु प्रथम सोपान है।

**मानसिक स्वास्थ्य लाभ =** मानसिक दुःख में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विवाद इत्यादि समाहित हैं। तथा यह भी सत्य है कि जीवन में सभी प्राणी शान्ति तथा सुख भी चाहते हैं किन्तु वह सुख को बाहर ढूँढते हैं जो बाह्य न रहकर आन्तरिक इन्द्रिय का विषय है, मानसिक स्वास्थ्य हेतु भगवान् तीन प्रकार के संकल्पों के विषय में अवगत कराते हैं जिनमें प्रथमतः योगाभ्यास के माध्यम से मन को अनुशासन में लाना है, साथ ही शरीर और इन्द्रियों को वश में करने की क्षमता का विकास करना। यह धृति योग के द्वारा विकसित होता है, जो साधक की प्राणशक्ति मन तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को स्थिर विषय में अवगत कराते हैं, अर्थात् मन को स्थिर रखती है, उसको ही सात्विक धृति या सङ्कल्प कहा जाता है, इस प्रकार बोध प्राप्त होने

के पश्चात् वह भिक्षु कहता है कि मेरे सुख-दुख का कारण न कोई व्यक्ति है, न देव है, न कोई ग्रह है, न कोई काल है, अतः महापुरुष मन को ही इन सब का कारण मानते हैं क्योंकि सम्पूर्ण संसार चक्र का चलायमान स्वभाव मन के कारण ही है। वस्तुतः मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है।<sup>29</sup> यह अधिगम कराने में यह गीता सहायक सिद्ध होगी।

**क्षमा का मार्ग** = समाज में जहाँ एक तरफ असहिष्णुता व्याप्त होती दिखाई दे रही है वहीं यह गीता सहिष्णुता के भाव को स्थापित करके क्षमा व समत्व जैसे मौलिक गुणों का निर्माण करती है। जिससे व्यक्ति में अत्यन्त कठिनतम समय में भी अपनी मनोस्थिति पर विजय प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है।

**निष्कर्ष** = यह गीता धार्मिक पाठ मात्र न होकर के समाज के लिये मार्गदर्शिका का कार्य करेगी, आज के तनाव पूर्ण जीवन शैली में भिक्षु गीता पर यह शोध पत्र पाठकों में धैर्य, क्षमा तथा मनोनिग्रह जैसे महत्वपूर्ण विषयों की और ध्यान केन्द्रित करने में सहायक सिद्ध होगा और मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक क्षेत्रों में भी पाठकों को लाभ प्राप्त होगा। भिक्षु पात्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि साधक को किसी अन्य में परिष्कार करने की अपेक्षा स्वयं के आन्तरिक मन को समझना वास्तविक परिवर्तन व विजय है।

### सहायक स्रोत

- श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1997
  - गीता-संग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2021
  - ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2011
  - वेदान्तसाद, शुक्ल बद्रीनाथ (व्या.), मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2019
  - वेदान्तसारः(सारबोधिनी-विमला-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2011
  - दासगुप्ता सुरेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शन का इतिहास, शास्त्री कलानाय व कुमार सुधीर (अनु.), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1978
  - भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, दीनानाथ शुक्ला, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1993
- Srimad Bhagavata Purana, 11.23 - Bhikshu Gita  
The Spiritual Scientist - Insights on Bhikshu Gita

### संदर्भ

- गीयतेस्म आत्मविद्योपदेशात्मिका ब्रह्मतत्त्वोपदेशमयी कथायत्र। शब्दकल्पद्रुमः
- विद्यावतां भागवते परीक्षा।
- केनचिद्विष्णुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः । स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ भिक्षुगीता ५
- द्वन्द्वभो सहनं तपः। योग दर्शनम्
- आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयन् । देवतातिथिभृत्यांश्च स कदर्य इति स्मृतः ॥ भिक्षु गीता भावार्थ दीपिका ६

- तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः । धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ भिक्षु गीता ९
- ज्ञातयो जगद्गुः किंचित्किंचिदस्यव उद्धव । दैवतः कालतः किंचिद्रह्यबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ भिक्षु गीता ११
- तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः । खिद्यतो बाव्यकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ भिक्षु गीता १३
- दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्या। यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ नीति शतकम् ४३
- दातव्यं भोक्तव्यं धनविषये सञ्चयो न कर्तव्यः। पश्येह मधुकरिणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥ पञ्चतन्त्र मित्रसंप्राप्ति १५३
- तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ ईशावास्योपनिषद् १
- जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् । जिह्वां क्वचित्संशयति स्वदद्धिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ भिक्षुगीता ५१
- दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् । यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित्कृद्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ भिक्षुगीता ५२ ॥
- आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः । न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् कृद्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ भिक्षुगीता ५३
- हा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽस्य जनस्य ते वै । ग्रहैर्महस्यैव वदन्ति पीडां कृद्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ भिक्षुगीता ५४
- कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ । नाग्रेहि तापो न हिमस्य तत्स्यात्कृद्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ भिक्षुगीता ५६
- न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य । यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न विभेति भूतैः ॥ भिक्षुगीता ५७
- तस्मात्सर्वात्मना तात निगूहाण मनो धिया । मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ भिक्षुगीता ६१
- य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः । धारयन् श्रावयन् शृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ भिक्षुगीता ६२
- अतो मनोनिग्रहे कृते सर्वं कृतं स्यात्, तं विना तु सर्वं व्यर्थमित्याह- दानमिति द्वाभ्याम् । स्वधर्मो नित्यनैमित्तिकः । सद्व्रतान्येकादशयुपवासादीनि । अन्यानि च यावन्ति कर्माणि । एते सर्वे उपाया मनोनिग्रहलक्षणोऽन्तो निष्ठा फलं येषां ते तथा। ननु ज्ञानाङ्गत्वं तेषां प्रसिद्धम् । भावार्थ दीपिका ४६
- नित्यादीनां बुद्धिशुद्धिः परं प्रयोजनम् उपासनानां तु चित्तैकाग्र्यम् । वेदान्तसारः
- समाधिर्निग्रह एव परो योगो ज्ञानम् । भावार्थ दीपिका ४६
- भाव प्रकाशिका ४७
- समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् । असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ भिक्षुगीता ४७
- असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ गीता ६/३५
- परित्यज्य सर्वं विषय भोगं गृहस्थाश्रमाद् व्रजति गच्छतीति परिव्राजकः। शब्दकल्पद्रुम
- स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये सुस्निग्धे चन्दने तथा। समता भावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥ ब्रह्म वैवर्त्ते गणपति खंड 35 वां अध्याय।
- आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन, सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ गीता ६/३२
- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ ब्रह्मविन्दूपनिषद् ०२